.. Dnyaneshvari or Bhavarthadipika Chapter 17 ..
॥ ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय १७ ॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥
अध्याय सतरावा ।
श्रद्धात्रयविभागयोगः ।

विश्वविकासित मुद्रा। जया सोडी तुझी योगमुद्रा। तया नमोजी गणेंद्रा। श्रीगुरुराया ॥ १॥
त्रिगुणत्रिपुरीं वेढिला। जीवत्वदुर्गीं आडिला। तो आत्मशंभूनें सोडविला। तुझिया स्मृती ॥ २॥
म्हणौनि शिवेंसीं कांटाळा। गुरुत्वें तूंचि आगळा। तऱ्ही हळु मायाजळा-। माजीं तारूनि ॥ ३॥
जे तुझ्याविखीं मूढ। तयांलागीं तूं वक्रतुंड। ज्ञानियांसी तरी अखंड। उजूचि आहासी ॥ ४॥
दैविकी दिठी पाहतां सानी। तऱ्ही मीलनोन्मीलनीं। उत्पत्ति प्रळयो दोन्ही। लीलाचि करिसी ॥ ५॥
प्रवृत्तिकर्णाच्या चाळीं। उठली मदगंधानिळीं। पूजीजसी नीलोत्पलीं। जीवभृंगांच्या ॥ ६॥
पाठीं निवृत्तिकर्णताळें। आहाळली ते पूजा विधुळे। तेव्हां मिरविसी मोकळें। आंगाचें लेणें ॥ ७॥
वामांगीचा लास्यविलासु। जो हा जगद्रूप आभासु। तो तांडवमिसें कळासु। दाविसी तूं ॥ ८॥
हें असो विस्मो दातारा। तूं होसी जयाचा सोयरा। सोइरिकेचिया व्यवहारा। मुकेचि तो ॥ ९॥
फेडितां बंधनाचा ठावो। तूं जगद्बंधु ऐसा भावो। धरूं वोळगे उवावो। तुझाचि आंगीं ॥ १०॥
तंव दुजयाचेनि नांवें तया। देहही नुरेचि पैं देवराया। जेणें तूं आपणपयां। केलासि दुजा ॥ ११॥
तूंतें करूनि पुढें। जे उपायें घेती दवडे। तयां ठासी बहुवें पाडें। मागांचि तूं ॥ १२॥
जो ध्यानें सूये मानसीं। तयालागीं नाहीं तूं त्याचे देशीं। ध्यानही विसरे तेणेंसीं। वालभ तुज ॥ १३॥
तूतें सिद्धचि जो नेणे। तो नांदे सर्वज्ञपणें। वेदांही येवढें बोलणें। नेघसी कानीं ॥ १४॥
मौन गा तुझें राशिनांव। आतां स्तोत्रीं कें बांधों हाव। दिसती तेतुली माव। भजों काई ॥ १५॥
दैविकें सेवकु हों पाहों। तरी भेदितां द्रोहोचि लाहों। म्हणौनि आतां कांहीं नोहों। तुजलागीं जी ॥ १६॥
जैं सर्वथा सर्वही नोहिजे। तैं अद्वया तूतें लाहिजे। हें जाणें मी वर्म तुझें। आराध्य लिंगा ॥ १७॥
तरी नुरोनि वेगळेंपण। रसीं भजिन्नलें लवण। तैसें नमन माझें जाण। बहु काय बोलों ॥ १८॥
आतां रिता कुंभ समुद्रीं रिगे। तो उचंबळत भरोनि निगे। कां दर्शी दीपसंगें। दीपुचि होय ॥ १९॥
तैसा तुझिया प्रणितीं। मी पूर्णु जाहलों श्रीनिवृत्ती। आतां आणीन व्यक्तीं। गीतार्थु तो ॥ २०॥
तरी षोडशाध्यायशेखीं। तिये समाप्तीच्या श्लोकीं। जो ऐसा निर्णयो निष्टंकीं। ठेविला देवें ॥ २१॥
जे कृत्याकृत्यव्यवस्था। अनुष्ठावया पार्था। शास्त्रचि एक सर्वथा। प्रमाण तुज ॥ २२॥
तेथ अर्जुन मानसें। म्हणे हें ऐसें कैसें। जे शास्त्रेंवीण नसे। सुटिका कर्मा ॥ २३॥
तरी तक्षकाची फडे। ठाकोनि कैं तो मणि काढे। कैं नाकींचा केशु जोडे। सिंहाचिये ? ॥ २४॥
मग तेणें तो वोंविजे। तरीच लेणें पाविजे। एऱ्हवीं काय असिजे। रिक्तकंठीं ? ॥ २५॥
तैसी शास्त्रांची मोकळी। यां कैं कोण पां वेंटाळी। एकवाक्यतेच्या फळीं। पैसिजे कैं ? ॥ २६॥
जालयाही एकवाक्यता। कां लाभें वेळु अनुष्ठितां। कैंचा पैसारु जीविता। येतुलालिया ॥ २७॥
आणि शास्त्रें अर्थें देशें काळें। या चहूंही जें एकफळे। तो उपावो कें मिळे। आघवयांसी ? ॥ २८॥

म्हणौनि शास्त्राचें घडतें। नोहें प्रकारें बहुतें। तरी मुर्खा मुमुक्षां येथें। काय गति पां ? ॥ २९ ॥
हा पुसावया अभिप्रावो। जो अर्जुन करी प्रस्तावो। तो सतराविया ठावो। अध्याया येथ ॥ ३०॥
तरी सर्वविषयीं वितृष्णु। जो सकळकळीं प्रवीणु। कृष्णाही नवल कृष्णु। अर्जुनत्वें जो ॥ ३१॥
शौर्या जोडला आधारु। जो सोमवंशाचा शृंगारु। सुखादि उपकारु। जयाची लीला ॥ ३२॥
जो प्रज्ञेचा प्रियोत्तमु। ब्रह्मविद्येचा विश्रामु। सहचरु मनोधर्मु। देवाचा जो ॥ ३३॥

अर्जुन उवाच ।
ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १॥

तो अर्जुन म्हणे गा तमालश्यामा। इंद्रियां फांवलिया ब्रह्मा। तुझां बोलु आम्हा। साकांक्षु पैं जी ॥ ३४॥
जें शास्त्रेंवांचूनि आणिकें। प्राणिया स्वमोक्षु न देखे। ऐसें कां कैंपखें। बोलिलासी ॥ ३५॥
तरी न मिळेचि तो देशु। नव्हेचि काळा अवकाशु। जो करवी शास्त्राभ्यासु। तोही दुरी ॥ ३६॥
आणि अभ्यासीं विरजिया। होती जिया सामुग्रिया। त्याही नाहीं आपैतिया। तिये वेळीं ॥ ३७॥
उजू नोहेचि प्राचीन। नेदीचि प्रज्ञा संवाहन। ऐसें ठेलें आपादन। शास्त्राचें जया ॥ ३८॥
किंबहुना शास्त्रविखीं। एकही न लाहातीचि नखी। म्हणौनि उखिविखी। सांडिली जिहीं ॥ ३९॥
परी निर्धारूनि शास्त्रें। अर्थानुष्ठानें पवित्रें। नांदताति परत्रें। साचारें जे ॥ ४०॥
तयांऐसें आम्हीं होआवें। ऐसी चाड बांधोनि जीवें। घेती तयांचें मागावे। आचरावया ॥ ४१॥
धड्याचिया आखरां। तळीं बाळ लिहे दातारा। कां पुढांसूनि पडिकरा। अक्षमु चाले ॥ ४२॥
तैसें सर्वशास्त्रनिपुण। तयाचें जें आचरण। तेंचि करिती प्रमाण। आपलिये श्रद्धे ॥ ४३॥
मग शिवादिकें पूजनें। भूम्यादिकें महादानें। आग्निहोत्रादि यजनें। करिती जे श्रद्धा ॥ ४४॥
तयां सत्त्वरजतमां-/। माजीं कोण पुरुषोत्तमा। गति होय ते आम्हां। सांगिजो जी ॥ ४५॥
तंव वैकुंठपीठींचें लिंग। जो निगमपद्माचा पराग। जिये जयाचेनि हें जग। अंगच्छाया ॥ ४६॥
काळ सावियाचि वाढु। लोकोत्तर प्रौढु। आद्वितीय गूढु। आनंदघनु ॥ ४७॥
इयें श्लाघिजती जेणें बिकें। तें जयाचें आंगीं असिकें। तो श्रीकृष्ण स्वमुखें। बोलत असे ॥ ४८॥

श्री भगवानुवाच ।
त्रिविध भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २॥

म्हणे पार्था तुझा अतिसो। हेंही आम्ही जाणतसों। जे शास्त्राभ्यासाचा आडसो। मानितोसि कीं ॥ ४९॥
नुसधियाची श्रद्धा। झोंबों पाहसी परमपदा। तरी तैसें हें प्रबुद्धा। सोहोपें नोहे ॥ ५०॥
श्रद्धा म्हणितलियासाठीं। पातेजों नये किरीटी। काय द्विजु अंत्यजघृष्टीं। अंत्यजु नोहे ? ॥ ५१॥
गंगोदक जरी जालें। तरी मद्यभांडां आलें। तें घेऊं नये कांहीं केलें। विचारीं पां ॥ ५२॥
चंदनु होय शीतळु। परी अग्नीसी पावे मेळु। तैं हातीं धरितां जाळूं। न शके काई ? ॥ ५३॥
कां किडाचिये आटतिये पुटीं। पडिलें सोळें किरीटी। घेतलें चोखासाठीं। नागवीना ? ॥ ५४॥

तैसें श्रद्धेचें दळवाडें। अंगें कीर चोखडें। परी प्राणियांच्या पडे। विभागीं जैं ॥ ५५ ॥
ते प्राणिये तंव स्वभावें। आनादिमायाप्रभावें। त्रिगुणाचेचि आघवे। वळिले आहाती ॥ ५६ ॥
तेथही दोन गुण खांचती। मग एक धरी उन्नती। तैं तैसियाचि होती वृत्ती। जीवांचिया ॥ ५७ ॥
वृत्तीऐसें मन धरिती। मनाऐसी क्रिया करिती। केलिया ऐसी वरीती। मरोनि देहें ॥ ५८ ॥
बीज मोडे झाड होये। झाड मोडे बीजीं सामाये। ऐसेनि कल्पकोडी जाये। परी जाति न नशे ॥ ५९ ॥
तियापरीं यियें अपारें। होत जात जन्मांतरें। परी त्रिगुणत्व न व्यभिचरें। प्राणियांचें ॥ ६० ॥
म्हणूनि प्राणियांच्या पैकीं। पडिली श्रद्धा अवलोकीं। ते होय गुणासारिखी। तिहीं ययां ॥ ६१ ॥
विपायें वाढे सत्त्व शुद्ध। तेव्हां ज्ञानासी करी साद। परी एका दोघे वोखद। येर आहाती ॥ ६२ ॥
सत्त्वाचेनि आंगलगें। ते श्रद्धा मोक्षफळा रिगे। तंव रज तम उगे। कां पां राहाती ? ॥ ६३ ॥
मोडोनि सत्त्वाची त्राये। रजोगुण आकाशें जाये। तेव्हां तेचि श्रद्धा होये। कर्मकेरसुणी ॥ ६४ ॥
मग तमाची उठी आगी। तेव्हां तेचि श्रद्धा भंगी। हों लागे भोगालागीं। भलतेया ॥ ६५ ॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

एवं सत्त्वरजतमा-/। वेगळी श्रद्धा सुवर्मा। नाहीं गा जीवग्रामा-/। माजीं यया ॥ ६६ ॥
म्हणौनि श्रद्धा स्वाभाविक। असे पैं त्रिगुणात्मक। रजतमसात्त्विक। भेदीं इहीं ॥ ६७ ॥
जैसें जीवनचि उदक। परी विषीं होय मारक। कां मिरयामाजीं तीख। उंसीं गोड ॥ ६८ ॥
तैसा बहुवसें तमें। जो सदाचि होय निमे। तेथ श्रद्धा परीणमे। तेंचि होऊनि ॥ ६९ ॥
मग काजळा आणि मसी। न दिसे विवंचना जैसी। तेवीं श्रद्धा तामसी। सिनी नाहीं ॥ ७० ॥
तैसीच राजसीं जीवीं। रजोमय जाणावी। सात्त्विकीं आघवीं। सत्त्वाचीच ॥ ७१ ॥
ऐसेनि हा सकळु। जगडंबरु निखिळु। श्रद्धेचाचि केवळु। वोतला असे ॥ ७२ ॥
परी गुणत्रयवशें। त्रिविधपणाचें लासें। श्रद्धे जें उठिलें असे। तें वोळख तूं ॥ ७३ ॥
तरी जाणिजे झाड फुलें। कां मानस जाणिजे बोलें। भोगें जाणिजे केलें। पूर्वजन्मींचें ॥ ७४ ॥
तैसीं जिहीं चिन्हीं। श्रद्धेचीं रूपें तीन्हीं। देखिजती ते वानी। अवधारीं पां ॥ ७५ ॥

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

तरी सात्त्विक श्रद्धा। जयांचा होय बांधा। तयां बहुतकरूनि मेधा। स्वर्गीं आथी ॥ ७६ ॥
ते विद्याजात पढती। यज्ञक्रिये निवडती। किंबहुना पडती। देवलोकीं ॥ ७७ ॥
आणि श्रद्धा राजसा। घडले जे वीरेशा। ते भजती राक्षसां। खेचरां हन ॥ ७८ ॥
श्रद्धां जे कां तामसी। ते मी सांगेन तुजपाशीं। जे कां केवळ पापराशी। आतिकर्कशी निर्दयत्वें ॥ ७९ ॥
जीववधें साधूनि बळी। भूतप्रेतकुळें मैळीं। स्मशानीं संध्याकाळीं। पूजिती जे ॥ ८० ॥
ते तमोगुणाचें सार। काढूनि निर्मिले नर। जाण तामसियेचें घर। श्रद्धेचें तें ॥ ८१ ॥
ऐसी इहीं तिहीं लिंगीं। त्रिविध श्रद्धा जगीं। पैं हें ययालागीं। सांगतु असें ॥ ८२ ॥

जे हे सात्त्विक श्रद्धा। जतन करावी प्रबुद्धा। येरी दोनी विरुद्धा। सांडाविया ॥ ८३॥
हे सात्त्विकमति जया। निर्वाहती होय धनंजया। बागुल नोहे तया। कैवल्य तें ॥ ८४॥
तो न पढो कां ब्रह्मसूत्र। नालोढो सर्व शास्त्र। सिद्धांत न होत स्वतंत्र। तयाच्या हातीं ॥ ८५॥
परी श्रुतिस्मृतींचे अर्थ। जे आपण होऊनि मूर्त। अनुष्ठानें जगा देत। वडील जे हे ॥ ८६॥
तयांचीं आचरती पाउलें। पाऊनि सात्त्विकी श्रद्धा चाले। तो तेंचि फळ ठेविलें। ऐसें लाहे ॥ ८७॥
पैं एक दीपु लावी सायासें। आणिक तेथें लाऊं बैसें। तरी तो काय प्रकाशें। वंचिजे गा ? ॥ ८८॥
कां येकें मोल अपार। वेंचोनि केलें धवळार। तो सुरवाडु वस्तीकर। न भोगी काई ? ॥ ८९॥
हें असो जो तळें करी। तें तयाचीच तृषा हरी। कीं सुआरासीचि अन्न घरीं। येरां नोहे ? ॥ ९०॥
बहुत काय बोलों पैं गा। येका गौतमासीचि गंगा। येरां समस्तां काय जगां। वोहोळ जाली ? ॥ ९१॥
म्हणौनि आपुलियापरी। शास्त्र अनुष्ठीती कुसरी। जाणे तयांते श्रद्धाळु जो वरी। तो मूर्खुही तरे ॥ ९२॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दंभाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५॥

ना शास्त्राचेनि कीर नांवें। खाकरोंही नेणती जीवें। परी शास्त्रज्ञांही शिवें। टेंकों नेदिती ॥ ९३॥
वडिलांचिया क्रिया। देखोनि वाती वांकुलिया। पंडितां डाकुलिया। वाजविती ॥ ९४॥
आपलेनीचि आटोपें। धनित्वाचेनि दर्पें। साचचि पाखंडाचीं तपें। आदरिती ॥ ९५॥
आपुलिया पुढिलांचिया। आंगीं घालूनि कातिया। रक्तमांसा प्रणीतया। भर भरु ॥ ९६॥
रिचविती जळतकुंडीं। लाविती चेड्याच्या तोंडीं। नवसियां देती उंडी। बाळकांची ॥ ९७॥
आग्रहाचिया उजरिया। क्षुद्र देवतां वरीया। अन्नत्यागें सातरीया। ठाकती एक ॥ ९८॥
अगा आत्मपरपीडा। बीज तमक्षेत्रीं सुहाडा। पेरिती मग पुढां। तेंचि पिके ॥ ९९॥
बाहु नाहीं आपुलिया। आणि नावेतेंही धनंजया। न धरी होय तया। समुद्रीं जैसें ॥ १००॥
कां वैद्यातें करी सळा। रसु सांडी पाय खोळां। तो रोगिया जेवीं जिव्हाळा। सवता होय ॥ १०१॥
नाना पडिकराचेनि सळें। काढी आपुलेचि डोळे। तें वानवसां आंधळें। जैसें ठाके ॥ १०२॥
तैसें तयां आसुरां होये। निंदूनि शास्त्रांची सोये। सैंघ धांवताती मोहें। आडवीं जे कां ॥ १०३॥
कामु करवी तें करिती। क्रोधु मारवी ते मारिती। किंबहुना मातें पुरिती। दुःखाचा गुंडां ॥ १०४॥

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६॥

आपुलां परावां देहीं। दुःख देती जें जें कांहीं। मज आत्मया तेतुलाही। होय शीणु ॥ १०५॥
पैं वाचेचेनिही पालवें। पापियां तयां नातळावें। परी पडिलें सांगावें। त्यजावया ॥ १०६॥
प्रेत बाहिरें घालिजे। कां अंत्यजु संभाषणीं त्यजिजे। हें असो हातें क्षाळिजे। कश्मलातें ? ॥ १०७॥
तेथ शुद्धीचिया आशा। तो लेपु न मनवे जैसा। तयांतें सांडावया तैसा। अनुवादु हा ॥ १०८॥
परी अर्जुना तूं तयांतें। देखसी तैं स्मर हो मातें। जे आन प्रायश्चित्त येथें। मानेल ना ॥ १०९॥
म्हणौनि जे श्रद्धा सात्त्विकी। पुढती तेंचि पैं येकी। जतन करावी निकी। सर्वांपरी ॥ ११०॥

तरी धरावा तैसा संगु। जेणें पोखे सात्त्विक लागु। सत्त्ववृद्धीचा भागु। आहारु घेपें ॥ १११॥
एऱ्हवीं तरी पाहीं। स्वभाववृद्धीच्या ठाईं। आहारावांचूनि नाहीं। बळी हेतु ॥ ११२॥
प्रत्यक्ष पाहें पां वीरा। जो सावध घे मदिरा। तो होऊनि ठाके माजिरा। तियेचि क्षणीं ॥ ११३॥
कां जो साविया अन्नरसु सेवी। तो व्यापिजे वातश्लेष्मस्वभावीं। काय ज्वरु जालिया निववी। पयादिक ? ॥ ११४॥
नातरी अमृत जयापरी। घेतलिया मरण वारी। कां आपुलियाऐसें करी। जैसें विष ॥ ११५॥
तेवीं जैसा घेपे आहारु। धातु तैसाचि होय आकारु। आणि धातु ऐसा अंतरु। भावो पोखे ॥ ११६॥
जैसें भांडियाचेनि तापें। आंतुलें उदकही तापे। तैसी धातुवशें आटोपे। चित्तवृत्ती ॥ ११७॥
म्हणौनि सात्त्विकु रसु सेविजे। तैं सत्त्वाची वाढी पाविजे। राजसा तामसा होईजे। येरीं रसीं ॥ ११८॥
तरी सात्त्विक कोण आहारु। राजसा तामसा कायी आकारु। हें सांगों करीं आदरु। आकर्णनीं ॥ ११९॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिम शृणु ॥ ७॥

आणि एकसरें आहारा। कैसेनि तिनी मोहरा। जालिया तेही वीरा। रोकडें दाऊं ॥ १२०॥
तरी जेवणाराचिया रुची। निष्पत्ति कीं बोनियांची। आणि जेवितां तंव गुणांची। दासी येथ ॥ १२१॥
जे जीव कर्ता भोक्ता। तो गुणास्तव स्वभावता। पावोनियां त्रिविधता। चेष्टे त्रिधा ॥ १२२॥
म्हणौनि त्रिविधु आहारु। यज्ञुही त्रिप्रकारु। तप दान हन व्यापारु। त्रिविधचि ते ॥ १२३॥
पैं आहार लक्षण पहिले?। सांगों जें म्हणितलें। तें आईक गा भलें। रूप करूं ॥ १२४॥

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ ८॥

तरी सत्त्वगुणाकडे। जें दैवें भोक्ता पडे। तैं मधुरीं रसीं वाढे। मेचु तया ॥ १२५॥
आंगेंचि द्रव्यें सुरसें। जे आंगेंचि पदार्थ गोडसे। आंगेंचि स्नेहें बहुवसें। सुपक्वें जियें ॥ १२६॥
आकारें नव्हती डगळें। स्पर्शें अति मवाळें। जिभेलागीं स्नेहाळें। स्वादें जियें ॥ १२७॥
रसें गाढीं वरी ढिलीं। द्रवभावीं आथिलीं। ठायें ठावो सांडिलीं। अग्नितापें ॥ १२८॥
आंगें सानें परीणामें थोरु। जैसें गुरुमुखींचें अक्षरु। तैशी अल्पीं जिहीं अपारु। तृप्ति राहे ॥ १२९॥
आणि मुखीं जैसीं गोडें। तैसीचिहि ते आंतुलेकडे। तिये अन्नीं प्रीति वाढे। सात्त्विकांसी ॥ १३०॥
एवं गुणलक्षण। सात्त्विक भोज्य जाण। आयुष्याचें त्राण। नीच नवें हें ॥ १३१॥
येणें सात्त्विक रसें। जंव देहीं मेहो वरीषे। तंव आयुष्यनदी उससे। दिहाचि दिहा ॥ १३२॥
सत्त्वाचिये कीर पाळती। कारण हाचि सुमती। दिवसाचिये उन्नती। भानु जैसा ॥ १३३॥
आणि शरीरा हन मानसा। बळाचा पैं कुवासा। हा आहारु तरी दशा। कैंची रोगां ॥ १३४॥
हा सात्त्विकु होय भोग्यु। तैं भोगावया आरोग्यु। शरीरासी भाग्यु। उदयलें जाणो ॥ १३५॥
आणि सुखाचें घेणें देणें। निकें उवाया ये येणें। हें असो वाढे साजणें। आनंदेंसीं ॥ १३६॥
ऐसा सात्त्विकु आहारु। परीणमला थोरु। करी हा उपकारु। सबाह्यासी ॥ १३७॥
आतां राजसासि प्रीती। जिहीं रसीं आथी। करूं तयाही व्यक्ती। प्रसंगें गा ॥ १३८॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

तरी मारें उणें काळकुट। तेणें मानें जें कडुवट। कां चुनियाहूनि दासट। आम्ल हन ॥ १३९ ॥
कणिकीतें जैसें पाणी। तैसेंचि मीठ बांधया आणी। तेतुलीच मेळवणी। रसांतरांची ॥ १४० ॥
ऐसें खारट अपाडें। राजसा तया आवडे। ऊन्हाचेनि मिषें तोंडें। आगीचि गिळी ॥ १४१ ॥
वाफेचिया सिगे। वातीही लाविल्या लागे। तैसें उन्ह मागे। राजसु तो ॥ ११४२ ॥
वावदळ पाडूनि ठाये। साबळु डाहारला आहे। तैसें तीख तो खाये। जें घायेंविण रुपे ॥ १४३ ॥
आणि राखेहूनि कोरडें। आंत बाहेरी येके पाडें। तो जिव्हादंशु आवडे। बहु तया ॥ १४४ ॥
परस्परें दांतां। आदळु होय खातां। तो गा तोंडीं घेतां। तोषों लागे ॥ १४५ ॥
आधींच द्रव्यें चुरमुरीं। वरी परवडिजती मोहरी। जियें घेतां होती धुवारी। नाकेंतोंडें ॥ १४६ ॥
हें असो उगें आगीतें। म्हणे तैसें राइतें। पढियें प्राणापरौतें। राजसासि गा ॥ १४७ ॥
ऐसा न पुरोनि तोंडा। जिभा केला वेडा। अन्नमिषें अग्नि भडभडां। पोटीं भरी ॥ १४८ ॥
तैसाचि लवंगा सुंठे। मग भुई गा सेजे खाटे। पाणियाचें न सुटे। तोंडोनि पात्र ॥ १४९ ॥
ते आहार नव्हती घेतले। व्याधिव्याळ जे सुतले। ते चेववावया घातलें। माजवण पोटीं ॥ १५० ॥
तैसें एकमेकां सळें। रोग उठती एके वेळे। ऐसा राजसु आहारु फळे। केवळ दुःखें ॥ १५१ ॥
एवं राजसा आहारा। रूप केलें धनुर्धरा। परीणामाचाहि विसुरा। सांगितला ॥ १५२ ॥
आतां तया तामसा। आवडे आहारु जैसा। तेंही सांगों चिळसा। झणें तुम्ही ॥ १५३ ॥
तरी कुहिलें उष्टें खातां। न मनिजे तेणें अनहिता। जैसें कां उपहिता। म्हैसी खाय ॥ १५४ ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यम् भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

निपजलें अन्न तैसें। दुपाहरीं कां येरें दिवसें। अतिकरें तैं तामसें। घेईजे तें ॥ १५५ ॥
नातरी अर्ध उकडिलें। कां निपट करपोनि गेलें। तैसेंही खाय चुकलें। रसा जें येवों ॥ १५६ ॥
जया कां आथि पूर्ण निष्पत्ती। जेथ रसु धरी व्यक्ती। तें अन्न ऐसी प्रतीती। तामसा नाहीं ॥ १५७ ॥
ऐसेनि कहीं विपायें। सदन्ना वरपडा होये। तरी घाणी सुटे तंव राहे। व्याघ्रु जैसा ॥ १५८ ॥
कां बहुवें दिवशीं वोलांडिलें। स्वादपणें सांडिलें। शुष्क अथवा सडलें। गाभिणेंही हो ॥ १५९ ॥
तेंही बाळाचे हातवरी। चिवडिलें जैसी राडी करी। का सवें बैसोनि नारी। गोतांबील करी ॥ १६० ॥
ऐसेनि कश्मळें जैं खाय। तैं तया सुखभोजन ऐसें होय। परी येणेंही न धाय। पापिया तो ॥ १६१ ॥
मग चमत्कारु देखा। निषेधाचा आंबुखा। जया का सदोखा। कुद्रव्यासी ॥ १६२ ॥
तया अपेयांच्या पानीं। अखाद्यांच्या भोजनीं। वाढविजे उतान्ही। तामसें तेणें ॥ १६३ ॥
एवं तामस जेवणारा। ऐसैसी मेचु हे वीरा। तयाचें फल दुसरां। क्षणीं नाहीं ॥ १६४ ॥
जे जेव्हांचि हें अपवित्र। शिवे तयाचें वक्त्र। तेव्हांचि पापा पात्र। जाला तो कीं ॥ १६५ ॥
यावरतें जें जेवीं। ते जेविती वोज न म्हणावी। पोटभरती जाणावी। यातना ते ॥ १६६ ॥

शिरच्छेदें काय होये। का आगीं रिघतां कैसें आहे। हें जाणावें काई पाहें। परी साहातुचि असे ॥१६७॥
म्हणौनि तामसा अन्ना। परीणामु गा सिनाना। न सांगोंचि गा अर्जुना। देवो म्हणे ॥१६८॥
आतां ययावरी। आहाराचिया परी। यज्ञुही अवधारीं। त्रिधा असे ॥१६९॥
परी तिहींमाजीं प्रथम। सात्त्विक यज्ञाचें वर्म। आईक पां सुमहिम -। शिरोमणी ॥१७०॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥

तरी एकु प्रियोत्तमु-/। वांचोनि वाढों नेदी कामु। जैसा का मनोधर्मु। पतिव्रतेचा ॥१७१॥
नाना सिंधूतें ठाकोनि गंगा। पुढारां न करीचि रिगा। का आत्मा देखोनि उगा। वेदु ठेला ॥१७२॥
तैसें जे आपुल्या स्वहितीं। वेंचूनियां चित्तवृत्ती। नुरवितीचि अहंकृती। फळालागीं ॥१७३॥
पातलेया झाडाचें मूळ। मागुतें सरों नेणेंचि जळ। जिरालें गां केवळ। तयाच्याचि आंगीं ॥१७४॥
तैसें मनें देहीं। यजननिश्चयाच्या ठायीं। हारपोनि जें कांहीं। वांछितीना ॥१७५॥
तिहीं फळवांच्छात्यागीं। स्वधर्मावांचूनि विरागीं। कीजे तो यज्ञु सर्वांगीं। अळंकृतु ॥१७६॥
परी आरिसा आपणपें। डोळां जैसें घेपें। कां तळहातींचें दीपें। रत्न पाहिजे ॥१७७॥
नाना उदितें दिवाकरें। गमावा मार्गु दिठी भरे। तैसा वेदु निर्धारें। देखोनियां ॥१७८॥
तियें कुंडें मंडप वेदी। आणीकही संभारसमृद्धी। ते मेळवणी जैसी विधी। आपणपां केली ॥१७९॥
सकळावयव उचितें। लेणीं पातलीं जैसीं आंगातें। तैसे पदार्थ जेथिंचे तेथें। विनियोगुनी ॥१८०॥
काय वानूं बहुतीं बोलीं। जैसी सर्वाभरणीं भरली। ते यज्ञविद्याचि रूपा आली। यजनमिषें ॥१८१॥
तैसा सांगोपांगु। निफजे जो यागु। नुठऊनियां लागु। महत्त्वाचा ॥१८२॥
प्रतिपाळु तरी पाटाचा। झाडीं कीजे तुळसीचा। परी फळा फुला छायेचा। आश्रयो नाहीं ॥१८३॥
किंबहुना फळाशेवीण। ऐसेया निगुती निर्माण। होय तो यागु जाण। सात्त्विकु गा ॥१८४॥

अभिसन्धाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥१२॥

आतां यज्ञु कीर वीरेशा। करी पैं याचिऐसा। परी श्राद्धालागीं जैसा। अवंतिला रावो ॥१८५॥
जरी राजा घरासि ये। तरी बहुत उपेगा जाये। आणि कीर्तीही होये। श्राद्ध न ठके ॥१८६॥
तैसा धरूनि आवांका। म्हणे स्वर्गु जोडेल असिका। दीक्षितु होईन मान्यु लोकां। घडेल यागु ॥१८७॥
ऐसी केवळ फळालागीं। महत्त्व फोकारावया जगीं। पार्था निष्पत्ति जे यागीं। राजस पैं ते ॥१८८॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥

आणि पशुपक्षिविवाहीं। जोशी कामापरौता नाहीं। तैसा तामसा यज्ञा पाहीं। आग्रहोचि मूळ ॥१८९॥
वारया वाट न वाहे। कीं मरण मुहूर्त पाहे। निषिद्धांसीं बिहे। आगी जरी ॥१९०॥

तरी तामसाचिया आचारा। विधीचा आथी वोढावारा। म्हणूनि तो धनुर्धरा। उत्सृंखळु ॥१९१॥
नाहीं विधीची तेथ चाड। नये मंत्रादिक तयाकड। अन्नजातां न सुये तोंड। मासिये जेवीं ॥१९२॥
वैराचा बोधु ब्राह्मणा। तेथ कें रिगेल दक्षिणा। अग्नि जाला वाउधाणा। वरपडा जैसा ॥१९३॥
तैसें वायांचि सर्वस्व वेंचे। मुख न देखती श्रद्धेचें। नागविलें निपुत्रिकाचें। जैसें घर ॥१९४॥
ऐसा जो यज्ञाभासु। तया नाम यागु तामसु। आइकें म्हणे निवासु। श्रियेचा तो ॥१९५॥
आता गंगेचें एक पाणी। परी नेलें आनानीं वाहणीं। एक मळीं एक आणी। शुद्धत्व जैसें ॥१९६॥
तैसें तिहीं गुणीं तप। येथ जाहलें आहे त्रिरूप। तें एक केलें दे पाप। उद्धरी एक ॥१९७॥
तरी तेंचि तिहीं भेदीं। कैसेनि पां म्हणौनि सुबुद्धी। जाणों पाहासी तरी आधीं। तपचि जाण ॥१९८॥
येथ तप म्हणजे काई। तें स्वरूप दाऊं पाहीं। मग भेदिलें गुणीं तिहीं। तें पाठीं बोलों ॥१९९॥
तरी तप जें कां सम्यक्। तेंही त्रिविध आइक। शारीर मानसिक। शाब्द गा ॥२००॥
आतां गा तिहीं माझारीं। शारीर तंव अवधारीं। तरी शंभु कां श्रीहरी। पढियंता होय ॥२०१॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥

तया प्रिया देवतालया। यात्रादिकें करावया। आठही पाहार जैसें पायां। उळिग घापे ॥२०२॥
देवांगणमिरवणियां। अंगोपचार पुरवणियां। करावया म्हणियां। शोभती हात ॥२०३॥
लिंग कां प्रतिमा दिठी। देखतखेंवों अंगेष्टी। लोटिजे कां काठी। पडली जैसी ॥२०४॥
आणि विधिविनयादिकीं। गुणीं वडील जे लोकीं। तया ब्राह्मणाची निकी। पाइकी कीजे ॥२०५॥
अथवा प्रवासें कां पीडा। का शिणले जे सांकडां। ते जीव सुरवाडा। आणिजती ॥२०६॥
सकल तीर्थांचिये धुरे। जियें कां मातापितरें। तयां सेवेसी कीर शरीरें। लोण कीजे ॥२०७॥
आणि संसाराऐसा दारुणु। जो भेटलाचि हरी शीणु। तो ज्ञानदानीं सकरुणु। भजिजे गुरु ॥२०८॥
आणि स्वधर्माचा आगिठां। देह जाड्याचिया किटा। आवृत्तिपुटीं सुभटा। झाडी कीजे ॥२०९॥
वस्तु भूतमात्रीं नमिजे। परोपकारीं भजिजे। स्त्रीविषयीं नियमिजे। नांवें नांवें ॥२१०॥
जन्मतेनि प्रसंगे। स्त्रीदेह शिवणें आंगें। तेथूनि जन्म आघवें। सोंवळें कीजे ॥२११॥
भुतमात्राचेनि नांवें। तृणही नासुडावें। किंबहुना सांडावे। छेद भेद ॥२१२॥
ऐसैसी जैं शरीरीं। रहाटीची पडे उजरी। तैं शारीर तप घुमरी। आलें जाण ॥२१३॥
पार्था समस्तही हें करणें। देहाचेनि प्रधानपणें। म्हणौनि ययातें मी म्हणें। शारीर तप ॥२१४॥
एवं शारीर जें तप। तयाचें दाविलें रूप। आतां आइक निष्पाप। वाङ्मय तें ॥२१५॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

तरी लोहाचें आंग तुक। न तोडितांचि कनक। केलें जैसें देख। परीसें तेणें ॥२१६॥
तैसें न दुखवितां सेजे। जावळिया सुख निपजे। ऐसें साधुत्व कां देखिजे। बोलणां जिये ॥२१७॥
पाणी मुदल झाडा जाये। तृण ते प्रसंगेंचि जियें। तैसें एका बोलिलें होये। सर्वांहि हित ॥२१८॥

जोडे अमृताची सुरसरी। तैं प्राणांतें अमर करी। स्नानें पाप ताप वारी। गोडीही दे ॥ २१९॥
तैसा अविवेकुही फिटे। आपुलें अनादित्व भेटे। आइकतां रुचि न विटे। पीयुषीं जैसी ॥ २२०॥
जरी कोणी करी पुसणें। तरी होआवें ऐसें बोलणें। नातरी अवर्तणें। निगमु का नाम ॥ २२१॥
ऋग्वेदादि तिन्ही। प्रतिष्ठीजती वाग्भुवनीं। केली जैसी वदनीं। ब्रह्मशाळा ॥ २२२॥
नातरी एकाधें नांव। तेंचि शैव का वैष्णव। वाचे वसे तें वाग्भव। तप जाणावें ॥ २२३॥
आतां तप जें मानसिक। तेंही सांगों आइक। म्हणे लोकनाथनायक । नायकु तो ॥ २२४॥

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६॥

तरी सरोवर तरंगीं। सांडिलें आकाश मेघीं। का चंदनाचें उरगीं। उद्यान जैसें ॥ २२५॥
नाना कळावैषम्यें चंद्रु। कां सांडिला आधीं नरेंद्रु। नातरी क्षीरसमुद्रु। मंदराचळें ॥ २२६॥
तैसीं नाना विकल्पजाळें। सांडुनि गेलिया सकळें। मन राहे का केवळें। स्वरूपें जें ॥ २२७॥
तपनेंवीण प्रकाशु। जाड्येंवीण रसीं रसु। पोकळीवीण अवकाशु। होय जैसा ॥ २२८॥
तैसी आपली सोय देखे। आणि आपलिया स्वभावा मुके। हिंवली जैसी आंगिकें। हिवों नेदी निजांग ॥ २२९॥
तैसें न चलतें कळंकेंवीण। शशिबिंब जैसें परीपूर्ण। तैसें चोखी शृंगारपण। मनाचें जें ॥ २३०॥
बुजाली वैराग्याची वोरप। जिराली मनाची धांप कांप। तेथ केवळ जाली वाफ। निजबोधाची ॥ २३१॥
म्हणौनि विचारावया शास्त्र। राहाटवावें जें वक्त्र। तें वाचेचेंही सूत्र। हातीं न धरी ॥ २३२॥
तें स्वलाभ लाभलेपणें। मन मनपणाही धरूं नेणें। शिवतलें जैसें लवणें। आपुलें निज ॥ २३३॥
तेथ कें उठिती ते भाव। जिहीं इंद्रियमार्गीं धांव। घेऊनि ठाकावे गांव। विषयांचे ते ॥ २३४॥
म्हणौनि तिये मानसीं। भावशुद्धिचि असे अपैसी। रोमशुचि जैसी। तळहातासी ॥ २३५॥
काय बहु बोलों अर्जुना। जैं हे दशा ये मना। तैं मनोतपाभिधाना। पात्र होय ती ॥ २३६॥
परी ते असो हें जाण। मानस तपाचें लक्षण। देवो म्हणे संपूर्ण। सांगितलें ॥ २३७॥
एवं देहवाचाचित्तें। जें पातलें त्रिविधत्वातें। तें सामान्य तप तूतें। परीसविलें गा ॥ २३८॥
आतां गुणत्रयसंगें। हेंचि विशेषीं त्रिविधीं रिगे। तेंही आइक चांगें। प्रज्ञाबळें ॥ २३९॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७॥

तरी हेंचि तप त्रिविधा। जें दाविलें तुज प्रबुद्धा। तेंचि करीं पूर्णश्रद्धा। सांडूनि फळ ॥ २४०॥
जैं पुरतिया सत्त्वशुद्धी। आचरिजे आस्तिक्यबुद्धी। तैं तयातेंचि गा प्रबुद्धी। सात्त्विक म्हणिपे ॥ २४१॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवं ॥ १८॥

नातरी तपस्थापनेलागीं। दुजेपण मांडूनि जगीं। महत्त्वाच्या शृंगीं। बैसावया ॥ २४२॥

त्रिभुवनींचिया सन्माना। न वचावें ठाया आना। धुरेचिया आसना। भोजनालागीं ॥ २४३॥
विश्वाचिया स्तोत्रा। आपण होआवया पात्रा। विश्वें आपलिया यात्रा। कराविया यावें ॥ २४४॥
लोकांचिया विविधा पूजा। आश्रयो न धरावया दुजा। भोग भोगावे वोजा। महत्त्वाचिया ॥ २४५॥
अंग बोल माखूनि तपें। विकावया आपणपें। अंगहीन पडपे। जियापरी ॥ २४६॥
हें असो धनमानीं आस। वाढउनी तप कीजे सायास। तैं तेंचि तप राजस। बोलिजे गा ॥ २४७॥
परी पहुरणी जें दुहिलें। तैं तें गुरूं न दुभेचि व्यालें। का उभें शेत चारिलें। पिकावया नुरे ॥ २४८॥
तैसें फोकारितां तप। कीजे जें साक्षेप। तें फळीं तंव सोप। निःशेष जाय ॥ २४९॥
ऐसें निर्फळ देखोनि करितां। माझारीं सांडी पंडुसुता। म्हणौनि नाहीं स्थिरता। तपा तया ॥ २५०॥
एऱ्हवीं तरी आकाश मांडी। जो गर्जोनि ब्रह्मांड फोडी। तो अवकाळु मेघु काय घडी। राहात आहे ? ॥ २५१॥
तैसें राजस तप जें होये। तें फळीं कीर वांझ जाये। परी आचरणींही नोहे। निर्वाहतें गा ॥ २५२॥
आतां तेंचि तप पुढती। तामसाचिये रीती। पैं परत्रा आणि कीर्ती। मुकोनि कीजे ॥ २५३॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९॥

केवळ मूर्खपणाचा वारा। जीवीं घेऊनि धनुर्धरा। नाम ठेविजे शरीरा। वैरियाचें ॥ २५४॥
पंचाग्नीची दडगी। खोलवीजती शरीरालागीं। का इंधन कीजे हें आगी । आंतु लावी ॥ २५५॥
माथां जाळिजती गुगुळु। पाठीं घालिजती गळु। आंग जाळिती इंगळु। जळतभीतां ॥ २५६॥
दवडोनि श्वासोच्छ्वास। कीजती वायांचि उपवास। कां घेपती धूमाचें घांस। अधोमुखें ॥ २५७॥
हिमोदकें आकंठें। खडकें सेविजती तटें। जितया मांसाचे चिमुटे। तोडिती जेथ ॥ २५८॥
ऐसी नानापरी हे काया। घाय सूतां पैं धनंजया। तप कीजे नाशावया। पुढिलातें ॥ २५९॥
आंगभारें सुटला धोंडा। आपण फुटोनि होय खंडखंडा। कां आड जालियातें रगडा। करी जैसा ॥ २६०॥
तेवीं आपलिया आटणिया। सुखें असतया प्राणिया। जिणावया शिराणिया। कीजती गा ॥ २६१॥
किंबहुना हे वोखटी। घेऊनि क्लेशाची हातवटी। तप निफजे तें किरीटी। तामस होय ॥ २६२॥
एवं सत्त्वादिकांच्या आंगीं। पाडिलें तप तिहीं भागीं। जालें तेंही तुज चांगी। दाविलें व्यक्ती ॥ २६३॥
आतां बोलतां प्रसंगा। आलें म्हणौनि पैं गा। करूं रूप दानलिंगा। त्रिविधा तया ॥ २६४॥
येथ गुणाचेनि बोलें। दानही त्रिविध असे जालें। तेंचि आइक पहिलें। सात्त्विक ऐसें ॥ २६५॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ २०॥

तरी स्वधर्मा आंतौतें। जें जें मिळे आपणयातें। तें तें दीजे बहुतें। सन्मानयोगें ॥ २६६॥
जालया सुबीजप्रसंगु। पडे क्षेत्रवाफेचा पांगु। तैसाचि दानाचा हा लागु। देखतसें ॥ २६७॥
अनर्घ्य रत्न हातां चढे। तैं भांगाराची वोढी पडे। दोनी जालीं तरी न जोडे। लेतें आंग ॥ २६८॥
परी सण सुहृद संपत्ती। हे तिन्ही येकीं मिळती। जे भाग्य धरी उन्नती। आपुल्याविषयीं ॥ २६९॥
तैसें निफजावया दान। जैं सत्त्वासि ये संवाहन। तैं देश काळ भाजन। द्रव्यही मिळे ॥ २७०॥

तरी आधीं तंव प्रयत्नेंसीं। होआवें कुरुक्षेत्र का काशी। नातरी तुके जो इहींसीं। तो देशुही हो ॥ २७१॥
तेथ रविचंद्रराहुमेळु। होतां पाहे पुण्यकाळु। का तयासारिखा निर्मळु। आनुही जाला ॥ २७२॥
तैशा काळीं तिये देशीं। होआवी पात्र संपत्ती ऐसी। मूर्ति आहे धरिली जैसी। शुचित्वेंचि कां ॥ २७३॥
आचाराचें मूळपीळ। वेदांची उतारपेठ। तैसें द्विजरत्न चोखट। पावोनियां ॥ २७४॥
मग तयाच्या ठाईं वित्ता। निवर्तवावी स्वसत्ता। परी प्रियापुढें कांता। रिगे जैसी ॥ २७५॥
का जयाचें ठेविलें तया। देऊनि होईजे उतराइया। नाना हडपें विडा राया। दिधला जैसा ॥ २७६॥
तैसेनि निष्कामें जीवें। भूम्यादिक अर्पावें। किंबहुना हांवे। नेदावें उठों ॥ २७७॥
आणि दान जया द्यावें। तयातें ऐसेया पाहावें। जया घेतलें नुमचवे। कायसेंनही ॥ २७८॥
साद घातलिया आकाशा। नेदी प्रतिशब्दु जैसा। का पाहिला आरसा। येरीकडे ॥ २७९॥
नातरी उदकाचिये भूमिके। आफळिलेनि कंदुकें। उधळौनि कवतिकें। न येईजे हाता ॥ २८०॥
नाना वसो घातला चारू। माथां तुरंबिला बुरू। न करी प्रत्युपकारू। जियापरी ॥ २८१॥
तैसें दिधलें दातयाचें। जो कोणेही आंगें नुमचे। अर्पिलया साम्य तयाचें। कीजे पैं गा ॥ २८२॥
ऐसिया जें सामग्रिया। दान निफजे वीरराया। तें सात्त्विक दानवर्या। सर्वांही जाण ॥ २८३॥
आणि तोचि देशु काळु। घडे तैसाचि पात्रमेळु। दानभागुही निर्मळु। न्यायगतु ॥ २८४॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१॥

परी मनीं धरूनि दुभतें। चारिजे जेवीं गाईतें। का पेंव करूनि आइतें। पेरूं जाइजे ॥ २८५॥
नाना दिठी घालुनि आहेरा। अवंतुं जाइजे सोयिरा। का वाण धाडिजे घरा। वोवसीयाचे ॥ २८६॥
पैं कळांतर गांठीं बांधिजे। मग पुढिलांचें काज कीजे। पूजा घेऊनि रसु दीजे। पीडितांसी ॥ २८७॥
तैसें जया जें दान देणें। तो तेणेंचि गा जीवनें। पुढती भुंजावा भावें येणें। दीजे जें का ॥ २८८॥
अथवा कोणी वाटे जातां। घेतलें उमचों न शकता। मिळे जैं पंडुसुता। द्विजोत्तमु ॥ २८९॥
तरी कवड्या एकासाठीं। अशेषां गोत्रांचींच किरीटी। सर्व प्रायश्चित्तें सुयें मुठीं। तयाचिये ॥ २९०॥
तेवींचि पारलौकिकें। फळें वांछिजती अनेकें। आणि दीजे तरी भुकें। येकाही नोहे ॥ २९१॥
तेंही ब्राह्मणु नेवो सरे। कीं हाणिचेनि शिणें झांसुरें। सर्वस्व जैसें चोरें। नागऊनि नेलें ॥ २९२॥
बहु काय सांगों सुमती। जें दीजे या मनोवृत्ती। तें दान गा त्रिजगतीं। राजस पैं ॥ २९३॥

अदेशकाले यद्दनमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२॥

मग म्लेंच्छांचे वसौटें। दांगाणे हन कैकटे। का शिबिरें चोहटे। नगरींचे ते ॥ २९४॥
तेही ठाईं मिळणी। समयो सांजवेळु कां रजनी। तेव्हां उदार होणें धनीं। चोरियेच्या ॥ २९५॥
पात्रें भाट नागारी। सामान्य स्त्रिया का जुवारी। जिये मूर्तिमंते भुररीं। भुले तया ॥ २९६॥
रूपानृत्याची पुरवणी। ते पुढां डोळेभारणी। गीत भाटीव तो श्रवणीं। कर्णजपु ॥ २९७॥
तयाहीवरी अळुमाळु। जैं घे फुलागंधाचा गुगुळु। तंव भ्रमाचा तो वेताळु। अवतरे तैसा ॥ २९८॥

तेथ विभांडूनियां जग। आणिले पदार्थ अनेग। तेणें घालूं लागे मातंग। गवादी जैसी ॥ २९९ ॥
एवं ऐसेनि जें देणें। तें तामस दान मी म्हणें। आणि घडे दैवगुणें। आणिकही ऐक ॥ ३०० ॥
विपायें घुणाक्षर पडे। टाळिये काउळा सांपडे। तैसे तामसां पर्व जोडे। पुण्यदेशीं ॥ ३०१ ॥
तेथ देखोनि तो आथिला। योग्यु मागोंही आला। तोही दर्पा चढला। भांबावें जरी ॥ ३०२ ॥
तरी श्रद्धा न धरी जिवीं। तया माथाही न खालवी। स्वयें न करी ना करवी। अर्घ्यादिक ॥ ३०३ ॥
आलिया न घली बैसों। तेथ गंधाक्षतांचा काय अतिसो। हा अप्रसंगु कीर असो। तामसीं नरीं ॥ ३०४ ॥
पैं बोळविजे रिणाइतु। तैसा झकवी तयाचा हातु। तूं करणें याचा बहुतु। प्रयोगु तेथ ॥ ३०५ ॥
आणि जया जें दे किरीटी। तयातें उमाणी तयासाठीं। मग कुबोलें कां लोटी। अवज्ञेच्या ॥ ३०६ ॥
हें बहु असो यापरी। मोल वेंचणें जें अवधारीं। तया नांव चराचरीं। तामस दान ॥ ३०७ ॥
ऐशीं आपुलाला चिन्हीं। अळंकृतें तिन्हीं। दानें दाविलीं अभिधानीं। रजतमाचिया ॥ ३०८ ॥
तेथ मी जाणत असें। विपायें तूं गा ऐसें। कल्पिसील मानसें। विचक्षणा ॥ ३०९ ॥
जें भवबंधमोचक। येकलें कर्म सात्त्विक। तरी कां वेखासी सदोख। येर बोलावीं ? ॥ ३१० ॥
परी नोसंतितां विवसी। भेटी नाहीं निधीसी। का धूं न साहतां जैसी। वाती न लगे ॥ ३११ ॥
तैसें शुद्धसत्त्वाआड। आहे रजतमाचें कवाड। तें भेदणे यातें कीड। म्हणावें कां ? ॥ ३१२ ॥
आम्ही श्रद्धादि दानांत। जें समस्तही क्रियाजात। सांगितलें कां व्याप्त। तिहीं गुणीं ॥ ३१३ ॥
तेथ भरंवसेनि तिन्ही। न सांगोंचि ऐसें मानीं। परी सत्त्व दावावया दोन्ही। बोलिलों येरें ॥ ३१४ ॥
जें दोहींमाजीं तिजें असे। तें दोन्ही सांडितांचि दिसे। अहोरात्रत्यागें जैसें। संध्यारूप ॥ ३१५ ॥
तैसें रजतमविनाशें। तिजें जें उत्तम दिसे। तें सत्त्व हें आपैसें। फावासि ये ॥ ३१६ ॥
एवं दाखवावया सत्त्व तुज। निरूपिलें तम रज। तें सांडूनि सत्त्वें काज। साधीं आपुलें ॥ ३१७ ॥
सत्त्वेंचि येणें चोखाळें। करीं यज्ञादिकें सकळें। पावसी तैं करतळें। आपुलें निज ॥ ३१८ ॥
सूर्यें दाविलें सांतें। काय एक न दिसे तेथें। तेवीं सत्त्वें केलें फळातें। काय नेदी ? ॥ ३१९ ॥
हे कीर आवडतांविखीं। शक्ति सत्त्वीं आथी निकी। परी मोक्षेंसी एकीं। मिसळणें जें ॥ ३२० ॥
तें एक आनचि आहे। तयाचा सावावो जैं लाहे। तैं मोक्षाचाही होये। गांवीं सरतें ॥ ३२१ ॥
पैं भांगार जऱ्हीं पंधरें। तऱ्ही राजावळींचीं अक्षरें। लाहे तैंचि सरे। जियापरी ॥ ३२२ ॥
स्वच्छें शीतळें सुगंधें। जळें होतीं सुखप्रदें। परी पवित्रत्व संबंधें। तीर्थाचेनि ॥ ३२३ ॥
नयी हो कां भलतैसी थोरी। परी गंगा जैं अंगीकारी। तैंचि तिये सागरीं। प्रवेशु गा ॥ ३२४ ॥
तैसें सात्त्विका कर्मा किरीटी। येतां मोक्षाचिये भेटी। न पडे आडकाठी। तें वेगळें आहे ॥ ३२५ ॥
हा बोलु आइकतखेवीं। अर्जुना आधि न माये जीवीं। म्हणे देवें कृपा करावी। सांगावें तें ॥ ३२६ ॥
तेथ कृपाळुचक्रवर्ती। म्हणे आईक तयाची व्यक्ती। जेणें सात्त्विक तें मुक्ती-। रत्न देखे ॥ ३२७ ॥

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

तरी अनादि परब्रह्म। जें जगदादि विश्रामधाम। तयाचें एक नाम। त्रिधा पैं असे ॥ ३२८ ॥
तें कीर अनाम अजाती। परी अविद्यावर्गाचिये राती-/। माजी वोळखावया श्रुती। खूण केली ॥ ३२९ ॥
उपजलिया बाळकासी। नांव नाहीं तयापासीं। ठेविलेनि नांवेंसी। ओ देत उठी ॥ ३३० ॥

कष्टले संसारशीणें। जे देवों येती गाऱ्हाणें। तयां ओ दे नांवें जेणें। तो संकेतु हा ॥ ३३१॥
ब्रह्माचा अबोला फिटावा। अद्वैततत्त्वें तो भेटावा। ऐसा मंत्रु देखिला कणवा। वेदें बापें ॥ ३३२॥
मग दाविलेनि जेणें एकें। ब्रह्म आळविलें कवतिकें। मागां असत ठाके। पुढां उभें ॥ ३३३॥
परी निगमाचळशिखरीं। उपनिषदार्थनगरीं। आहाति जे ब्रह्माच्या येकाहारीं। तयांसीच कळे ॥ ३३४॥
हेंही असो प्रजापती। शक्ति जे सृष्टि करिती। ते जया एका आवृत्ती। नामाचिये ॥ ३३५॥
पैं सृष्टीचिया उपक्रमा-/ पूर्वीं गा वीरोत्तमा। वेडा ऐसा ब्रह्मा। एकला होता ॥ ३३६॥
मज ईश्वरातें नोळखे। ना सृष्टिही करूं न शके। तो थोरु केला एकें। नामें जेणें ॥ ३३७॥
जयाचा अर्थु जीवीं ध्यातां। जें वर्णत्रयचि जपतां। विश्वसृजनयोग्यता। आली तया ॥ ३३८॥
तेधवां रचिलें ब्रह्मजन। तयां वेद दिधलें शासन। यज्ञा ऐसें वर्तन। जीविकें केलें ॥ ३३९॥
पाठीं नेणों किती येर। स्रजिले लोक अपार। जाले ब्रह्मदत्त अग्रहार। तिन्हीं भुवनें ॥ ३४०॥
ऐसें नाममंत्रें जेणें। धातया अढंच करणें। तयाचें स्वरूप आइक म्हणे। श्रीकांतु तो ॥ ३४१॥
तरी सर्व मंत्रांचा राजा। तो प्रणवो आदिवर्णु बुझा। आणि तत्कारु जो दुजा। तिजा सत्कारु ॥ ३४२॥
एवं ॐतत्सदाकारु। ब्रह्मनाम हें त्रिप्रकारु। हें फूल तुरंबी सुंदरु। उपनिषदाचें ॥ ३४३॥
येणेंसीं गा होऊनि एक। जैं कर्म चाले सात्त्विक। तैं कैवल्यातें पाइक। घरींचें करी ॥ ३४४॥
परी कापुराचें थळींव। आणून देईल दैव। लेवों जाणणेंचि आडव। तेथ असे बापा ॥ ३४५॥
तैसें आदरिजेल सत्कर्म। उच्चरिजेल ब्रह्मनाम। परी नेणिजेल जरी वर्म। विनियोगाचें ॥ ३४६॥
तरी महंताचिया कोडी। घरा आलियाही वोढी। मानूं नेणतां परवडी। मुद्दल तुटे ॥ ३४७॥
कां ल्यावया चोखट। टीक भांगार एकवट। घालूनि बांधिली मोट। गळा जेवीं ॥ ३४८॥
तैसें तोंडीं ब्रह्मनाम। हातीं तें सात्त्विक कर्म। विनियोगेंवीण काम। विफळ होय ॥ ३४९॥
अगा अन्न आणि भूक। पासीं असे परी देख। जेऊं नेणतां बालक। लंघनचि कीं ॥ ३५०॥
का स्नेहसूत्र वैश्वानरा। जालियाही संसारा। हातवटी नेणतां वीरा। प्रकाशु नोहे ॥ ३५१॥
तैसे वेळे कृत्य पावे। तेथिंचा मंत्रुही आठवे। परी व्यर्थ तें आघवें। विनियोगेंवीण ॥ ३५२॥
म्हणौनि वर्णत्रयात्मक। जे हें परब्रह्मनाम एक। विनियोगु तूं आइक। आतां याचा ॥ ३५३॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४॥

तरी या नामींचीं अक्षरें तिन्हीं। कर्मा आदिमध्यनिदानीं। प्रयोजावीं पैं स्थानीं। इहीं तिन्हीं ॥ ३५४॥
हेंचि एकी हातवटी। घेउनि हन किरीटी। आले ब्रह्मविद भेटी। ब्रह्माचिये ॥ ३५५॥
ब्रह्मेंसीं होआवया एकी। ते न वंचती यज्ञादिकीं। जे चावळलें वोळखीं। शास्त्रांचिया ॥ ३५६॥
तो आदि तंव ओंकारु। ध्यानें करिती गोचरु। पाठीं आणिती उच्चारु। वाचेही तो ॥ ३५७॥
तेणें ध्यानें प्रकटें। प्रणवोच्चारें स्पष्टें। लागती मग वाटे। क्रियांचिये ॥ ३५८॥
आंधारीं अभंगु दिवा। आडवीं समर्थु बोळावा। तैसा प्रणवो जाणावा। कर्मारंभीं ॥ ३५९॥
उचितदेवोद्देशें। द्रव्यें धर्म्यें आणि बहुवसें। द्विजद्वारां हन हुताशें। यजिती पैं ते ॥ ३६०॥
आहवनीयादि वन्ही। निक्षेपरूपीं हवनीं। यजिती पैं विधानीं। फुडे होउनी ॥ ३६१॥
किंबहुना नाना याग। निष्पत्तीचे घेउनि अंग। करिती नावडतेया त्याग। उपाधीचा ॥ ३६२॥

कां न्यायें जोडला पवित्रीं। भूम्यादिकीं स्वतंत्रीं। देशकाळशुद्ध पात्रीं। देती दानें ॥ ३६३॥
अथवा एकांतरां कृच्छ्रीं। चांद्रायणें मासोपवासीं। शोषोनि गा धातुराशी। करिती तपें ॥ ३६४॥
एवं यज्ञदानतपें। जियें गाजती बंधरूपें। तिहींच होय सोपें। मोक्षाचें तयां ॥ ३६५॥
स्थळीं नावा जिया दाटिजे। जळीं तियांचि जेवीं तरीजे। तेवीं बंधकीं कर्मीं सुटिजे। नामें येणें ॥ ३६६॥
परी हें असो ऐसिया। या यज्ञदानादि क्रिया। ओंकारें सावायिलिया। प्रवर्तती ॥ ३६७॥
तिया मोटकिया जेथ फळीं। रिगों पाहाती निहाळीं। प्रयोजिती तिये काळीं। तच्छब्दु तो ॥ ३६८॥

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपः क्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ २५॥

जें सर्वांही जगापरौतें। जें एक सर्वही देखतें। तें तच्छब्दें बोलिजे तें। पैल वस्तु ॥ ३६९॥
तें सर्वादिकत्वें चित्तीं। तद्रूप ध्यावूनियां सुमती। उच्चारेंही व्यक्ती। आणिती पुढती ॥ ३७०॥
म्हणती तद्रूपा ब्रह्मा तया। फळेंसीं क्रिया इयां। तेंचि होतु आम्हां भोगावया। कांहींचि नुरो ॥ ३७१॥
ऐसेनि तदात्मकें ब्रह्में। तेथ उगाणूनि कर्में। आंग झाडिती न ममें। येणें बोलें ॥ ३७२॥
आतां ओंकारें आदरिलें। तत्कारें समर्पिलें। इया रिती जया आलें। ब्रह्मत्व कर्मा ॥ ३७३॥
तें कर्म कीर ब्रह्माकारें। जालें तेणेंही न सरे। जे करी तेणेंसी दुसरें। आहे म्हणौनि ॥ ३७४॥
मीठ आंगें जळीं विरे। परी क्षारता वेगळी उरे। तैसें कर्म ब्रह्माकारें। गमे तें द्वैत ॥ ३७५॥
आणि दुजे जंव जंव घडे। तंव तंव संसारभय जोडे। हें देवो आपुलेनि तोंडें। बोलती वेद ॥ ३७६॥
म्हणौनि परत्वें ब्रह्म असे। तें आत्मत्वें परीयवसे। सच्छब्द या रिणादोषें। ठेविला देवें ॥ ३७७॥
तरी ओंकार तत्कारीं। कर्म केलें जें ब्रह्मशरीरीं। जें प्रशस्तादि बोलवरी। वाखाणिलें ॥ ३७८॥
प्रशस्तकर्मीं तिये। सच्छब्दा विनियोगु आहे। तोचि आइका होये। तैसा सांगों ॥ ३७९॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६॥

तरी सच्छब्दें येणें। आटूनि असताचें नाणें। दाविजे अव्यंगवाणें। सत्तेचें रूप ॥ ३८०॥
जें सत् तेंचि काळें देशें। होऊं नेणेचि अनारिसे। आपणपां आपण असे। अखंडित ॥ ३८१॥
हें दिसतें जेतुलें आहे। तें असतपणें जें नोहे। देखतां रूपीं सोये। लाभे जयाची ॥ ३८२॥
तेणेंसीं प्रशस्त तें कर्म। जें जालें सर्वात्मक ब्रह्म। देखिजे करूनि सम। ऐक्यबोधें ॥ ३८३॥
तरी ओंकार तत्कारें। जें कर्म दाविलें ब्रह्माकारें। तें गिळूनि होईजे एकसरें। सन्मात्रचि ॥ ३८४॥
ऐसा हा अंतरंगु। सच्छब्दाचा विनियोगु। जाणा म्हणे श्रीरंगु। मी ना म्हणें हो ॥ ३८५॥
ना मीचि जरी हो म्हणें। तरी श्रीरंगीं दुजें हेंचि उणें। म्हणौनि हें बोलणें। देवाचेंचि ॥ ३८६॥
आतां आणिकीही परी। सच्छब्दु हा अवधारीं। सात्त्विक कर्मा करी। उपकारु जो ॥ ३८७॥
तरी सत्कर्में चांगें। चालिलीं अधिकारबगें। परी एकाधें कां आंगें। हिणावती जैं ॥ ३८८॥
तैं उणें एकें अवयवें। शरीर ठाके आघवें। कां अंगहीन भांडावें। रथाची गती ॥ ३८९॥
तैसें एकेंचि गुणेंवीण। सतचि परी असतपण। कर्म धरी गा जाण। जिये वेळे ॥ ३९०॥

तेव्हां ओंकार तत्कारीं। सावायिला हा चांगी परी। सच्छब्दु कर्मा करी। जीर्णोद्धारु ॥ ३९१॥
तें असतपण फेडी। आणी सद्भावाचिये रूढी। निजसत्त्वाचिये प्रौढी। सच्छब्दु हा ॥ ३९२॥
दिव्यौषध जैसें रोगिया। कां सावावो ये भंगलिया। सच्छब्दु कर्मा व्यंगलिया। तैसा जाण ॥ ३९३॥
अथवा कांहीं प्रमादें। कर्म आपुलिये मर्यादे। चुकोनि पडे निषिद्धे। वाटे हन ॥ ३९४॥
चालतयाही मार्गु सांडे। पारखियाचि अखरें पडे। राहाटीमाजीं न घडे। काइ काइ ? ॥ ३९५॥
म्हणौनि तैसी कर्मा। राभस्यें सांडे सीमा। असाधुत्वाचिया दुर्नामा। येवों पाहे जें ॥ ३९६॥
तेथ गा हा सच्छब्दु। येरां दोहींपरीस प्रबुद्धु। प्रयोजिला करी साधु। कर्मातें यया ॥ ३९७॥
लोहा परीसाची घृष्टी। वोहळा गंगेची भेटी। कां मृता जैसी वृष्टी। पीयूषाची ॥ ३९८॥
पैं असाधुकर्मा तैसा। सच्छब्दुप्रयोगु वीरेशा। हें असो गौरवुचि ऐसा। नामाचा यया ॥ ३९९॥
घेऊनि येथिंचें वर्म। जैं विचारिसी हें नाम। तैं केवळ हेंचि ब्रह्म। जाणसी तूं ॥ ४००॥
पाहें पां ॐतत्सत् ऐसें। हें बोलणें तेथ नेतसे। जेथूनि कां हें प्रकाशे। दृश्यजात ॥ ४०१॥
तें तंव निर्विशिष्ट। परब्रह्म चोखट। तयाचें हें आंतुवट। व्यंजक नाम ॥ ४०२॥
परी आश्रयो आकाशा। आकाशचि का जैसा। या नामानामी आश्रयो तैसा। अभेदु असे ॥ ४०३॥
उदयिला आकाशीं। रवीचि रवीतें प्रकाशी। हे नामव्यक्ती तैसी। ब्रह्मचि करी ॥ ४०४॥
म्हणौनि त्र्यक्षर हें नाम। नव्हे जाण केवळ ब्रह्म। ययालागीं कर्म। जें जें कीजे ॥ ४०५॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७॥

तें याग अथवा दानें। तपादिकेंही गहनें। तियें निफजतु कां न्यूनें। होऊनि ठातु ॥ ४०६॥
परी परीसाचा वरकली। नाहीं चोखाकिडाची बोली। तैसी ब्रह्मीं अर्पितां केलीं। ब्रह्मचि होती ॥ ४०७॥
उणिया पुरियाची परी। नुरेचि तेथ अवधारीं। निवडूं न येती सागरीं। जैसिया नदी ॥ ४०८॥
एवं पार्था तुजप्रती। ब्रह्मनामाची हे शक्ती। सांगितली उपपत्ती। डोळसा गा ॥ ४०९॥
आणि येकेकाही अक्षरा। वेगळवेगळा वीरा। विनियोगु नागरा। बोलिलों रीती ॥ ४१०॥
एवं ऐसें सुमहिम। म्हणौनि हें ब्रह्मनाम। आतां जाणितलें कीं सुवर्म। राया तुवां ? ॥ ४११॥
तरी येथूनि याचि श्रद्धा। उपलविली हो सर्वदा। जयाचें जालें बंधा। उरों नेदी ॥ ४१२॥
जिये कर्मीं हा प्रयोगु। अनुष्ठिजे सद्विनियोगु। तेथ अनुष्ठिला सांगु। वेदुचि तो ॥ ४१३॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७अ ॥

ना सांडूनि हे सोये। मोडूनि श्रद्धेची बाहे। दुराग्रहाची त्राये। वाढऊनियां ॥ ४१४॥
मग अश्वमेध कोडी कीजे। रत्नें भरोनि पृथ्वी दीजे। एकांगुष्ठींही तपिजे। तपसाहस्रीं ॥ ४१५॥

जळाशयाचेनि नांवें। समुद्रही कीजती नवे। परी किंबहुना आघवें। वृथाचि तें ॥ ४१६॥
खडकावरी वर्षले। जैसें भस्मीं हवन केलें। कां खेंव दिधलें। साउलिये ॥ ४१७॥
नातरी जैसें चडकणा। गगना हाणितलें अर्जुना। तैसा समारंभु सुना। गेलाचि तो ॥ ४१८॥
घाणां गाळिले गुंडे। तेथ तेल ना पेंडी जोडे। तैसें दरिद्र तेवढें। ठेलेंचि आंगीं ॥ ४१९॥
गांठीं बांधली खापरी। येथ अथवा पैलतीरीं। न सरोनि जैसी मारी। उपवासीं गा ॥ ४२०॥
तैसें कर्मजातें तेणें। नाहीं ऐहिकीचें भोगणें। तेथ परत्र तें कवणें। अपेक्षावें ॥ ४२१॥
म्हणौनि ब्रह्मनामश्रद्धा। सांडूनि कीजे जो धांदा। हें असो सिणु नुसधा। दृष्टादृष्टीं तो ॥ ४२२॥
ऐसें कलुषकरिकेसरी। त्रितापतिमिरतमारी। श्रीवर वीर नरहरी। बोलिलें तेणें ॥ ४२३॥
तेथ निजानंदा बहुवसा-/। माजीं अर्जुन तो सहसा। हरपला चंद्रु जैसा। चांदिणेनि ॥ ४२४॥
अहो संग्रामु हा वाणिया। मापें नाराचांचिया आणिया। सूनि माप घे मवणिया। जीवितेंसी ॥ ४२५॥
ऐसिया समयीं कर्कशें। भोगीजत स्वानंदराज्य कैसें। आजि भाग्योदयो हा नसे। आनी ठाईं ॥ ४२६॥
संजयो म्हणे कौरवराया। गुणा रिझों ये रिपूचिया। आणि गुरुही हा आमुचिया। सुखाचा येथ ॥ ४२७॥
हा न पुसता हे गोठी। तरी देवो कां सोडिते गांठी। तरी कैसेंनि आम्हां भेटी। परमार्थेंसीं ॥ ४२८॥
होतों अज्ञानाच्या आंधारां। वोसंतीत जन्मवाहरा। तों आत्मप्रकाशमंदिरा-/। आंतु आणिलें ॥ ४२९॥
एवढा आम्हां तुम्हां थोरु। केला येणें उपकारु। म्हणौनि हा व्याससहोदरु। गुरुत्वें होय ॥ ४३०॥
तेवींचि संजयो म्हणे चित्तीं। हा अतिशयो या नृपती। खुपेल म्हणौनि किती। बोलत असों ॥ ४३१॥
ऐसी हे बोली सांडिली। मग येरीचि गोठी आदरिली। जे पार्थें कां पुसिली। श्रीकृष्णातें ॥ ४३२॥
याचें जैसें कां करणें। तैसें मीही करीन बोलणें। ऐकिजो ज्ञानदेवो म्हणे। निवृत्तीचा ॥ ४३३॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥

Encoded and proofread by
Chhaya Deo, Sharad Deo, and Vishwas Bhide.
Assisted by
Sunder Hattangadi, Joshi, and Shree Devi Kumar.

Please send corrections to sanskrit@cheerful.com
Last updated November 23, 2008